कहानी

दो कलाकार

मन्नू भंडारी

"ऐ रूनी उठ", और चादर खींचकर चित्रा ने सोती हुई अरुणा को झकझोर कर उठा दिया।

"क्या है... क्यों परेशान कर रही है?" आंख मलते हुए तनिक खिझलाहट-भरे स्वर में अरुणा ने पूछा। चित्रा उसका हाथ पकड़कर खींचती हुई ले गई और अपने नए बनाए हुए चित्र के सामने ले जाकर खड़ा करके बोली— "देख, मेरा चित्र पूरा हो गया।"

"ओह! तो इसे दिखाने के लिए तूने मेरी नींद ख़राब कर दी। बद्तमीज़ कहीं की!"

"इस चित्र को ज़रा आंख खोलकर अच्छी तरह तो देख। न पा गई पहला इनाम तो नाम बदल देना।" चित्र को चारों ओर से घुमाते हुए अरुणा बोली, "किधर से देखूं, यह तो बता दे? हज़ार बार तुझसे कहा कि जिसका चित्र बनाए उसका नाम लिख दिया कर जिससे ग़लतफ़हमी न हुआ करे, वरना तू बनाए हाथी और हम समझें उल्लू।" फिर तस्वीर पर आंख गड़ाते हुए बोली, "किसी तरह नहीं समझ पा रही हूं कि चौरासी लाख योनियों में से आख़िर यह किस जीव की तस्वीर है?"

"तो आपको यह कोई जीव नज़र आ रहा है? अरे, ज़रा अच्छी तरह देख और समझने की कोशिश कर।"

"यह क्या? इसमें तो सड़क, आदमी, ट्राम, बस, मोटर, मकान—सब एक-दूसरे पर चढ़ रहे हैं, मानो सबकी खिचड़ी पकाकर रख दी हो। क्या घनचक्कर बनाया है?" और उसने वह चित्र रख दिया।

"ज़रा सोचकर बता कि यह किसका प्रतीक है?"

"तेरी बेवकूफ़ी का। आई है बड़ी प्रतीक वाली।"

"ज़रा-सा दिमाग़ लगाने की कोशिश करेगी तो समझ में आ जाएगा कि यह चित्र आज की दुनिया के कन्फ्यूज़न का प्रतीक है। बस हां, थोड़ा दिमाग होना ज़रूरी है।" चित्रा ने चुटकी ली तो अरुणा भभक उठी—

"मुझे तो तेरे दिमाग़ के कन्फ्यूज़न का प्रतीक नज़र आ रहा है। बिना मतलब ज़िन्दगी ख़राब कर रही है।" और अरुणा मुंह धोने के लिए बाहर चली गई। लौटी तो देखा तीन-चार बच्चे उसके कमरे के दरवाज़े पर खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आते ही बोले, "दीदी! सब बच्चे आकर बैठ गए, चलिए।"

"आ गए सब बच्चे? अच्छा चलो, मैं अभी आई।" बच्चे दौड़ पड़े।

"क्या ये बन्दर पाल रख हैं तूने भी?" फिर ज़रा हंसकर चित्रा बोली, "एक दिन तेरी पाठशाला का चित्र बनाना होगा। ज़रा लोगों को दिखाया ही करेंगे कि हमारी एक ऐसी मित्र साहिब थीं जो सारे जमादार, दाइयों और चपरासियों के बच्चों को पढ़ा-पढ़ाकर ही अपने को भारी पंडिता और समाज-सेविका समझती थीं।"

"जा-जा, समझते हैं तो समझते हैं। तू जाकर सारी दुनिया में ढिंढोरा पीटना, हमें कोई शरम है क्या? तेरी तरह लकीरें खींचकर तो समय बर्बाद नहीं करते।" और पैर में चप्पल डालकर वह बाहर मैदान में चली गई, जहां बिना किसी आयोजन के ही एक छोटी-सी पाठशाला बनी हुई थी।

रात के दस बजे थे। सारे हॉस्टल की बत्तियां नियमानुसार बुझ चुकी थीं। ऊपर के एक तल्ले पर अंधेरे में ही खुसुर-फुसुर चल रही थी। रविवार के दिन तो यों ही छुट्टी का मूड रहता है। दूसरे दिन में काफी नींद निकाल ली जाती थी, सो दस बजे लड़कियों को किसी तरह भी नींद नहीं आती थी। तभी हॉस्टल के फाटक में जलती हुई टॉर्च लिए कोई घुसा। अपने कमरे की खिड़की में से झांकते हुए सविता ने कहा, "ठाठ तो हॉस्टल में बस अरुणा ही के हैं, रात नौ बजे लौटो, दस बजे लौटो, कोई बन्धन नहीं। हम लोग तो दस के बाद बत्ती भी नहीं जला सकते।"

"लौट आई अरुणा दी? आज सवेरे से ही वे बड़ी परेशान थीं। फुलिया दाई का बच्चा बड़ा बीमार था, दोपहर से वे उसी के यहां बैठी थीं। पता नहीं, क्या हुआ बेचारे का?" शीला ने ठंडी सांस भरते हुए कहा।

"तू बड़ी भक्त है अरुणा दी की!"

"उनके जैसे गुण अपना ले तेरी भी भक्त हो जाऊंगी।"

"मैं कहती हूं, उन्हें यही सब करना है तो कहीं और रहें, हॉस्टल में रहकर यह जो नवाबी चलाती हैं, सो तो हमसे बर्दाश्त नहीं होती। सारी लड़कियां डरती हैं तो कुछ कहती नहीं, पर प्रिंसिपल और वार्डन तक रोब खाती हैं इनका, तभी तो सब प्रकार की छूट दे रखी है।"

"तू भी जिस दिन हाड़ तोड़कर दूसरों के लिए यों परिश्रम करने लग जाएगी न, उस दिन तेरा भी सब रोब खाने लगेंगे। पर तुम्हें तो सजने-संवरने से ही फुर्सत नहीं मिलती, दूसरों के लिए क्या ख़ाक काम करोगी।"

"अच्छा-अच्छा चल, अपना लैक्चर अपने पास रख।"

अरुणा अपने कमरे में घुसी तो बहुत ही धीरे-से, जिससे चित्रा की नींद न ख़राब हो। पर चित्रा जग ही रही थी। दोपहर से अरुणा बिना खाए-पीए बाहर थी, उसे नींद कैसी आती भला? मेस से उसका खाना लाकर उसे मेज़ पर ढककर रख दिया था। अरुणा के आते ही वह उठ बैठी और पूछा, "बड़ी देर लग गई, क्या हुआ रूनी!"

"वह बच्चा नहीं बचा चित्रा। किसी तरह उसे नहीं बचा सके।" और उसका स्वर किसी गहरे दुःख में डूब गया।

चित्रा ने माचिस लेकर लैम्प जलाया और स्टोव जलाने लगी खाना गरम करने के लिए। तभी अरुणा ने कहा, "रहने दे चित्रा मैं खाऊंगी नहीं, मुझे ज़रा-भी भूख नहीं है।" और उसकी आंखें फिर छलछला आईं।

बहुत ही स्नेह से अरुणा की पीठ थपथपाते हुए चित्रा ने कहा, "जो होना था सो हो गया, अब भूखे रहने से क्या होगा, थोड़ा-बहुत खा ले।"

"नहीं चित्रा, अब रहने दे, बस तू लैम्प बुझा दे।"

उसके बाद दो-तीन दिन तक अरुणा बहुत ही उदास रही, लेकिन समय के साथ-साथ यह ग़म भी जाता रहा, और सब काम ज्यों-का-त्यों चलने लगा।

चार बजते ही कॉलेज से सारी लड़कियां लौट आईं, पर अरुणा नहीं लौटी। चित्रा चाय के लिए उसकी प्रतिक्षा कर रही थी "पता नहीं कहां-कहां अटक जाती है, बस इसके पीछे बैठे रहा करो।"

"अरे, क्यों बड़-बड़ कर रही है। ले मैं आ गई। चल, बना चाय।"

"तेरे मनोज की चिट्ठी आई है।"

"कहां, तूने तो पढ़ ही ली होगी फाड़कर।"

"चल हट, ऐसी बोर चिट्ठियां पढ़ने का फालतू समय किसके पास है? तुम्हारी चिट्ठियों में रहता ही क्या है जो कोई पढ़े। बड़े-बड़े आदर्श की बातें, मानो ख़त न हुआ लैक्चर हुआ।""अच्छा-अच्छा, तू लिखा करना रसभरी चिट्ठियां, हमें तो वह सब आता नहीं।" वह लिफ़ाफ़ा फाड़कर पत्र पढ़ने लगी। जब उसका पत्र समाप्त हो गया तो चित्रा बोली, "आज पिताजी का भी पत्र आया है, लिखा है जैसे ही यहां का कोर्स समाप्त हो जाए, मैं विदेश जा सकती हूं। मैं जानती थी, पिताजी कभी मना नहीं करेंगे।"

"हां भाई! धनी पिता की इकलौती बिटिया ठहरी! तेरी इच्छा कभी टाली जा सकती है। पर सच कहती हूं, मुझे तो यह सारी कला इतनी निरर्थक लगती है, इतनी बेमतलब लगती है कि बता नहीं सकती किस काम की ऐसी कला जो आदमी को आदमी न रहने दे।"

"तो तू मुझे आदमी नहीं समझती, क्यों?"

"तुझे दुनिया से कोई मतलब नहीं, दूसरों से कोई मतलब नहीं, बस चौबीस घंटे अपने रंग और तूलियों में डूबी रहती है।

दुनिया में बड़ी-से-बड़ी घटना घट जाए, पर यदि उनमें तेरे चित्र के लिए कोई आइडिया न हो तो तेरे लिए वह घटना कोई महत्व नहीं रखती। बस, हर घड़ी, हर जगह और हर चीज़ में से तू अपने चित्रों के लिए मॉडल खोजा करती है।"

"मेरी इस लगन को देखकर ही तो गुरुजी कहते हैं कि वह समय दूर नहीं, जब हिन्दुस्तान के कोने-कोने में मेरी शोहरत गूंज उठेगी। अमृता शेरगिल की तरह मेरा भी नाम गूंज उठे, बस यही तमन्ना है।"

"कागज़ पर इन निर्जीव चित्रों को बनाने की बजाए दो-चार की ज़िन्दगी क्यों नहीं बना देती, तेरे पास सामर्थ्य है, साधन हैं।"

"वह काम तो तेरे और मनोज के लिए छोड़ दिया है। तुम दोनों ब्याह कर लो और फिर जल्दी से सारी दुनिया का कल्याण करने के लिए झंडा लेकर निकल पड़ना!" और चित्रा हंस पड़ी। फिर बोली—

"अच्छा, यह बता कि तेरे यह सब करने से ही क्या हो जाएगा? तूने अपनी अनोखी पाठशाला में दस-बीस बच्चे पढ़ा दिए, तो क्या निरक्षरता मिट जाएगी, या झोंपड़ी में दस-बीस औरतों को हुनर सिखाकर कुछ कमाने लायक बना दिया तो उससे गरीबी मिट जाएगी? अरे, यह सब काम एक के लिए होते नहीं। जब तक समाज का सारा ढांचा नहीं बदलता तब तक कुछ होने का नहीं, और ढांचा ही बदल गया तो तेरे-मेरे कुछ करने की ज़रूरत नहीं, सब अपने-आप ही हो जाएगा।"

फिर दोनों में कला और जीवन को लेकर लम्बी-लम्बी बहसें होती और चित्रा अन्त में कान पर हाथ धरकर उठ जाती, "अच्छा-अच्छा, बन्द कर यह लेक्चरबाज़ी बोर कहीं की!" यह पिछले पांच वर्षों से इसी प्रकार चल रहा था। हर दस-बीस दिन बाद दोनों में अपने-अपने उद्देश्यों को लेकर, अपनी-अपनी दिनचर्या को लेकर एक गरमा-गरम बहस हो ही जाती, पर न वह उसकी बात को लोहा मानती थी, न वह उसकी बात की कायल होती थी।

तीन दिन से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रोज़ अख़बारों में बाढ़ की ख़बरें आती थीं। बाढ़-पीड़ितों की दशा बिगड़ती जा रही थी, और वर्षा थी कि थमने का नाम ही नहीं लेती थी। अरुणा सारे दिन चन्दा इकट्ठा करने में व्यस्त रहती। एक दिन आख़िर चित्रा ने कह ही दिया, "तेरे इम्तिहान सर पर आ रहे हैं, कुछ पढ़ती-लिखती तू है नहीं, सारे दिन बस भटकती रहती है। फेल हो गई तो तेरे ससुर साहब क्या सोचेंगे कि इतना पैसा बेकार ही पानी में बहाया।"

"आज शाम को एक स्वयं सेवकों का दल जा रहा है, प्रिंसिपल से अनुमति ले ली, मैं भी उनके साथ जा रही हूं।" चित्रा की बात को बिना सुने उसने कहा।

शाम को अरुणा चली गई। पन्द्रह दिन बाद वह लौटी तो उसकी हालत काफ़ी ख़स्ता हो रही थी। सूरत ऐसी निकल आई थी मानो छः महीने से बीमार हो। चित्रा उस समय अपने गुरुदेव के पास गई हुई थी। अरुणा नहा-धोकर, खा-पीकर लेटने लगी, तभी उसकी नज़र चित्रा के नए चित्रों की ओर गई। तीन चित्र बने रखे थे, तीनों बाढ़ के चित्र थे। जो दृश्य वह अपनी आंखों से देखकर आ रही थी, वैसे ही दृश्य यहां भी अंकित थे। उसका मन जाने कैसा-कैसा हो आया। वहां लोगों के जीने के लाले पड़ रहे हैं और उसमें भी इसे चित्रकारी ही सूझती है और न जाने कितनी बातें सोचते-सोचते वह सो गई।

शाम को चित्रा तो अरुणा को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। "गनीमत है, तू लौट आई। मैं तो सोच रही थी कि कहीं तू बाढ़-पीड़ितों की सेवा करती ही रह जाए और मैं जाने से पहले तुझसे मिल भी न पाऊं।"

"क्यों, तेरा जाने का तय हो गया?"

"हां, अगले बुध को मैं घर जाऊंगी और बस एक सप्ताह बाद हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर पहुंच जाऊंगी।" उल्लास उसके स्वर में छलका पड़ रहा था।

"सच कह रही है, तू चली जाएगी चित्रा! छः साल से तेरे साथ रहते-रहते यह बात ही मैं तो भूल गई कि हमको अलग भी होना पड़ेगा। तू चली जाएगी तो मैं कैसे रहूंगी?"

"अरे, दो महीने बाद शादी कर लेगी, फिर याद भी न रहेगा कि कौन कम्बख़्त थी चित्रा! बड़ी लालसा थी तेरी शादी में आने की, पर अब तो आ नहीं सकूंगी। अच्छी तरह शादी करना, दोनों मिलकर सारे समाज का और सारे संसार का कल्याण करना।"

पर अरुणा के कानों में उसकी कोई बात नहीं पड़ रही थी। चित्रा के साथ बिताए हुए पिछले छः सालों के चित्र उसकी आंखों के सामने घूम रहे थे और वह उन्हीं में खोई बैठी रही।

"क्या सोचने लगी रूनी! मनोज की याद आ गई क्या?"

"चल हट! हर समय का मज़ाक अच्छा नहीं लगता।"

उस दिन रात में भी अरुणा अपने और चित्रा के बारे में ही सोचती ही। दोनों के आचार-विचार, रहन-सहन, रुचि आदि में ज़मीन-आसमान का अन्तर था, फिर भी कितना स्नेह था दोनों में। सारा हॉस्टल उनकी मित्रता ईर्ष्या की नज़र से देखता था। जब उसके बी.ए. के इम्तिहान थे तो चित्रा कितना ख़याल रखती थीं उसका। वह अक्सर चित्रा को डांट दिया करती थी, पर कभी उसने बुरा नहीं माना। यही चित्रा अब चली जाएगी—बहुत-बहुत दूर। ये दो महीने भी कैसे निकालेगी? और यही सब सोचते-सोचते उसे नींद आ गई।

आज चित्रा को जाना था। हॉस्टल से उसे बड़ी शानदार विदाई मिली थी। अरुणा सवेरे से ही उसका सारा सामान ठीक कर रही थी। एक-एक करके चित्रा सबसे मिल आई। बस गुरुजी के घर की तरफ चल पड़ी। तीन बज गए, पर वह लौटी नहीं। अरुणा उसका सारा काम समाप्त करके उसकी राह देख रही थी और भी कई लड़कियां वहां जमा थीं, कुछ बार-बार आकर पूछ जाती थीं, चित्रा लौटी या नहीं? पांच बजे की गाड़ी से वह जाने वाली है। अरुणा ने सोचा, वह खुद जाकर देख आए कि आख़िर बात क्या हो गई। तभी हड़बड़ाती-सी चित्रा ने प्रवेश किया, "बड़ी देर हो गई ना! अरे क्या करूं, बस, कुछ ऐसा हो गया कि रुकना ही पड़ा।"

"आख़िर क्या हो गया ऐसा, जो रुकना ही पड़ा, सुनें तो।" दो-तीन कंठ एक साथ बोले।

"गर्ग-स्टोर के सामने पेड़ के नीचे अक्सर एक भिखारिन बैठी रहा करती थी ना, लौटी तो देखा कि वह वहीं मरी पड़ी है और उसके दोनों बच्चे उसके सूखे शरीर से चिपकर बुरी तरह रो रहे हैं। जाने क्या था उस सारे दृश्य में, मैं अपने को रोक नहीं सकी— एक रफ़-सा स्केच बना ही डाला। बस, इसी में इतनी देर हो गई।" चर्चा इसी पर चल पड़ी, "कैसे मर गई, कल तो उसे देखा था।" किसी ने दार्शनिक की मुद्रा में कहा, "अरे, ज़िंदगी का क्या भरोसा, मौत कहकर थोड़े आती है।" आदि-आदि। पर इस सारी चर्चा से अरुणा कब खिसक गई, कोई जान ही नहीं पाया।

साढ़े चार बजे चित्रा हॉस्टल के फाटक पर आ गई, पर तब तक अरुणा का कहीं पता नहीं था। बहुत सारी लड़कियां उसे छोड़ने को स्टेशन आईं, पर चित्रा की आंखें बराबर अरुणा को ढूंढ़ रही थीं। उसे दृढ़ विश्वास था कि वह इस विदाई की बेला में उससे मिलने ज़रूर आएगी। पांच भी बज गए, रेल चल पड़ी, अनेक रूमालों ने हिल-हिलाकर चित्रा को विदाई दी, पर उसकी आंसू भरी आंखें किसी और को ही ढूंढ़ रही थीं—पर अरुणा न आई, सो न आई।

विदेश जाकर चित्रा तन-मन से अपने काम में जुट गई। उसकी लगन ने उसकी कला को निखार दिया। विदेशों में उसके चित्रों की धूम मच गई। भिखमंगी और दो अनाथ बच्चों के उस चित्र की प्रशंसा में तो अख़बारों के कॉलम-के-कॉलम भर गए। शोहरत के ऊंचे कगार पर बैठ, चित्रा जैसे अपना पिछला सब कुछ भूल गईं। पहले वर्ष तो अरुणा से पत्र-व्यवहार बड़े नियमित रूप से चला, फिर कम होते-होते एकदम बन्द हो गया। पिछले एक साल से तो उसे यह भी नहीं मालूम कि वह कहां है। नई कल्पनाएं और नए-नए विचार उसे नवीन सृजन की प्रेरणा देते और वह उन्हीं में खोई रहती। उसके चित्रों की प्रदर्शनियां होतीं। अनेक प्रतियोगिताओं में उसको 'अनाथ' शीर्षक वाला चित्र प्रथम पुरस्कार पा चुका था। उस चित्र में, जो देखता, वही चकित रह जाता। दुःख दारिद्रय और करुणा जैसे साकार हो उठे थे। तीन साल बाद जब वह भारत लौटी तो बड़ा स्वागत हुआ उसका। अख़बारों में उसकी कला पर, उसके जीवन पर अनेक लेख छपे। पिता अपनी इकलौती बिटिया की इस कामयाबी पर गद्‌गद्‌ थे— समझ नहीं पा रहे थे कि उसे कहां उठाएं, कहां बिठाएं। दिल्ली में उसके चित्रों की प्रदर्शनी का विराट आयोजन किया गया। उद्‌घाटन करने के लिए उसे ही बुलाया गया था। उस प्रदर्शनी को देखने के लिए जनता उमड़ पड़ी थी, भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी और चित्रा को लग रहा था, जैसे उसके सपने साकार हो गए।

उस भीड़-भाड़ की उपस्थिति को भूलकर अरुणा के गले से लिपट गई। “तुझे कब से चित्र देखने का शौक हो गया रूनी।”

“चित्रों को नहीं, चित्रा को देखने आई थी। तू तो एकदम भूल ही गई।”

“ये बच्चे किसके हैं?” दो प्यारे से बच्चे अरुणा से सटे खड़े थे। लड़के की उम्र कोई आठ साल की होगी शायद तो लड़की पांच के आस-पास की होगी।

“मेरे बच्चे हैं, और किसके! ये तुम्हारी चित्रा मासी हैं, नमस्ते करो अपनी मासी को।” अरुणा ने आदेश दिया।

बच्चों ने बड़ी अदा से नमस्ते किया। पर चित्रा अवाक् होकर कभी उनका और कभी अरुणा का मुंह देख रही थी। वह सारी बात का कुछ तुक नहीं मिला पा रही थी। तभी अरुणा ने टोका, “कैसी मासी है, प्यार तो कर।” और चित्रा ने दोनों के सिर पर हाथ फेरा। प्यार का जरा-सा सहारा पाकर लड़की चित्रा की गोदी में जा चढ़ी। अरुणा ने कहा, “तुम्हारी ये मासी बहुत अच्छी तस्वीरें बनाती हैं, ये सारी तस्वीरें इन्ही की बनाई हुई हैं।”

“सच?” आश्चर्य से बच्ची बोल पड़ी। “तब तो मासी, तुम ज़रूर ड्राइंग में फर्स्ट आती होओगी। मैं भी अपनी क्लास में फर्स्ट आती हूं— तुम हमारे घर आओगी तो अपनी कॉपी दिखाऊंगी।” बच्ची के स्वर में मुकाबले की भावना थी। चित्रा और अरुणा इस बात पर हंस पड़ीं।

“आप हमें सब तस्वीरें दिखाइए मासी, समझा-समझाकर।” बच्चे ने फ़रमाइश की। चित्रा समझाती तो क्या, यों ही तस्वीरें दिखाने लगी। घूमते-घूमते वे उसी भिखारिनी वाली तस्वीर के सामने आ पहुंचे। चित्रा ने कहा, “यही वह तस्वीर है रूनी, जिसने मुझे इतनी प्रसिद्धि दी।”

“ये बच्चे रो क्यों रहे हैं मासी?” तस्वीर को ध्यान से देखकर बालिका ने कहा।

“इनकी मां मर गई, देखती नहीं मरी पड़ी है। इतना ही नहीं समझती!” बालक ने मौका पाते ही अपने बड़प्पन की छाप लगाई।

“ये सचमुच के बच्चे थे मासी?” बालिका का स्वर करुण-से-करुणतर होता जा रहा था।

“और क्या, सचमुच के बच्चों को देखकर ही तो बनाई थी यह तस्वीर।”

“हाय राम! इसकी मां मर गई तो फिर इन बच्चों का क्या हुआ?” बालक ने पूछा।

“मासी, हमें ऐसी तस्वीर नहीं, अच्छी-अच्छी तस्वीरें दिखाओ, राजा, रानी की, परियों की—” उस तस्वीर को और अधिक देर तक देखना बच्ची के लिए असह्य हो उठा था। तभी अरुणा के पति आ पहुंचे। परिचय हुआ। साधारण बातचीत के पश्चात अरुणा ने दोनों बच्चों को उनके हवाले करते हुए कहा, “आप ज़रा बच्चों को प्रदर्शनी दिखाइए, मैं चित्रा को लेकर घर चलती हूं।”

बच्चे इच्छा न रहते हुए भी पिता के साथ विदा हुए। चित्रा को दोनों बच्चे बड़े ही प्यारे लगे। वह उन्हें एकटक देखती रही। जैसे ही वे आंखों से ओझल हुए उसने पूछा, “सच-सच बता रूनी! ये प्यारे-प्यारे बच्चे किसके हैं?”

“कहा तो, मेरे।” अरुणा ने हंसते हुए कहा।

“अरे, बताओ ना! मुझे ही बेवकूफ बनाने चली है।”

एक क्षण रुककर अरुणा ने पूछा, “बता दूं?” और फिर उस भिखारिन वाले चित्र के दोनों बच्चों पर अंगुली रखकर बोली, “ये ही वे दोनों बच्चे हैं।”

“क्याऽऽऽ!” विस्मय से चित्रा की आंखें फैली-की-फैली रह गईं।

“क्या सोच रही है चित्रा?”

“कुछ नहीं— मैं... मैं सोच रही थी कि...” पर शब्द शायद उसके विचारों में ही खो गए।

मन्नू भंडारी *हिन्दी साहित्य जगत की वरिष्ठ कहानीकार व लेखिका हैं।*